International Journal of Applied Research 2015; 1(8): 496-498

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(8): 496-498
www.allresearchjournal.com
Received: 20-05-2015
Accepted: 27-06-2015

बिपिन चन्द्र शर्मा
शोध्च्छात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
बिपिन चन्द्र शर्मा
शोध्च्छात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेदान्त दर्शन में भेदाभेदवाद – एक अवलोकन

बिपिन चन्द्र शर्मा

भूमिका

आधुनिक युग में शंकर , रामानुज, माध्व, वल्लभ आदि दार्शनिकों से जितने लोग परिचित हैं उतने भास्कर आदि भेदाभेदवादी दार्शनिकों से नहीं। अतः भास्कर आदि दार्शनिकों के दर्शनों को व्यापकतया प्रकाश में लाना नितान्त आवश्यक जान पडता है। इनका दर्शन भी भारतीय दर्शन के विकास में मूलभूत स्थान रखता है। भेदाभेदवादी दार्शनिकों में भास्कर के अतिरिक्त यादवप्रकाश, निम्बार्क, चैतन्य आदि दार्शनिक स्थान ग्रहण करते हैं। भेदाभेदवाद भी क्रमशः विकास को प्राप्त होते हुए औपाधिक भेदाभेदवाद, स्वाभाविक भेदाभेदवाद आदि रूपों में विकसित हुआ है। प्रस्तुत शोध–पत्र में भास्कर, यादवप्रकाश आदि भेदाभेदवादी आचार्यों के जीवन समय ,उनकी कृतियों तथा उनके दार्शनिक सिद्धान्तों की परस्पर समीक्षा की गयी है। प्रस्तुत शोधपत्र से निश्चित ही इन ओझल हुए आचार्यों से आधुनिक समाज लाभान्वित होगा, ऐसी शोधार्थी की आशा है।

वेदान्त दर्शन में जिन प्रमुख विषयों पर दार्शनिकों में मतभेद होता है उनमें ब्रह्म , जीव, जगत्, माया, ज्ञानमीमांसा, नीतिमीमांसा आदि विशेष हैं। इन तत्त्वों के आधार पर ही जगत् व जगत् से भिन्न तत्त्वों की व्याख्या की जाती है। यहां शोधार्थी द्वारा वेदान्त दर्शन के भेदाभेदवाद सिद्धान्त पर भास्कर, निम्बार्क आदि के मत को उपस्थापित कर समीक्षा की गयी है। वेदान्त दर्शन में भेदाभेद का यह सिद्धान्त प्रमुखतया जिन दार्शनिकों द्वारा विकसित किया गया है वे निम्न हैं—

१– औपाधिक भेदाभेदवाद – भास्कर

२– यादवप्रकाश का भेदाभेदवाद

३– स्वाभाविक भेदाभेदवाद – निम्बार्क

४– अचिन्त्य भेदाभेदवाद – चैतन्य

औपाधिक भेदाभेदवाद – भास्कर

भास्कर का समय शंकर का बाद का समय माना जाता है। दासगुप्त ने भास्कर का समय मध्य आठवीं से मध्य दसवीं के मध्य होने की सम्भावना व्यक्त की है क्योंकि भास्कर ने अपने भाष्य में शंकर का खण्डन किया है। इसके अतिरिक्त भास्कर का उदयनाचार्य ने भी उल्लेख किया है। अतः भास्कर का समय शंकरोत्तरवर्ती सिद्ध होता है। शंकरोत्तरवर्ती होने पर भी भास्कर पर शंकर के अद्वैतवाद का पूर्ण प्रभाव नहीं दिखाई देता। इससे भास्कर के स्वतन्त्र विचारों की सिद्धि होती है और वेदान्त में भास्कर की महता सिद्ध होती है।

भास्कर का दर्शन अद्वैत और द्वैत अथवा अद्वैत और विशिष्टाद्वैत के मध्य का दर्शन है। या यह कहें की भास्कर का दर्शन शंकर व मध्व अथवा शंकर व रामानुज के मध्य का दर्शन है। भास्कर न तो शंकर की तरह मात्र एक ब्रह्म की ही सत्ता मानते हैं न द्वैतवादियों की तरह ब्रह्म व जगत् की स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं। भास्कर ने उपाधि, मानवीय ज्ञान, मन ,बुद्धि आदि के आधार पर भेद व अभेद का निरूपण किया है। भास्कर के दर्शन का केन्द्र भी ब्रह्म ही है । ब्रह्म की स्तिथि के आधार पर ही वे ब्रह्म व जगत् की व्याख्या करते हैं। अर्थात् जब मनुष्य ब्रह्म एवं जगत् को भिन्न–भिन्न रूप में (अज्ञानावस्था) देखता है तो वह भेद को ही देखता है। तात्पर्य यह है की ब्रह्म की सत्ता पृथक रूप में तथा संसार की सत्ता जब पृथक रूप में स्वीकार की जाती है तो इसे भास्कर के दर्शन में भेद कहा जाता है। भेद की यह अवस्था अज्ञान के कारण ही अनुभूत होती है ऐसा कहा जा सकता है। इसका यह अर्थ हुआ कि जब तक संसार की स्तिथि रहती है तब तक भेद की स्तिथि भी रहती है। किन्तु यहां

एक सूक्ष्म दर्शन यह है कि भास्कर भेद की अनुभूति का प्रमुख कारण अज्ञान को मानते हैं। और यह अज्ञान प्रत्येक व्यक्ति का पृथक– पृथक होता है। अर्थात् एक जीव के अज्ञान नाश होने पर या ज्ञान प्राप्ति होने पर सबके अज्ञान का नाश व ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। यह जीव पर निर्भर है।

इस प्रकार भास्कर का दर्शन (भेदाभेद) वस्तुनिष्ठ नहीं अपितु व्यक्तिनिष्ठ सिद्ध होता है। क्योंकि जिस मनुष्य को यथार्थ ज्ञान हुआ है वही अभेद की अनुभूति करता है अन्य नहीं। उस समय अन्य के लिये भेद ही रहता है। भास्कर ने स्वसिद्धान्त को निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया है–

सागर की लहरें सागर से पृथक् भी हैं तथा नहीं भी हैं । सागर की लहरें जब उठती हैं तो भेद का अनुभव होता है किन्तु जब पुनः सागर में विलीन हो जाती हैं तो वे सागर से अभिन्न रूप में ही प्रतीत होती हैं । उसी प्रकार जगत् व ब्रह्म के विषय में भी समझना चाहिए।[1]

यादवप्रकाश का भेदाभेदवाद दर्शन

वेदान्त दर्शन में यादवप्रकाश प्रमुख आचार्य रहे हैं। किन्तु ये भी भास्कर की तरह अप्रसिद्ध ही रहे हैं। इनका भी भारतीय दर्शन में कुछ योगदान रहा है ये कम लोग ही जानते हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि उनका आज कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है किन्तु दासगुप्त[1] सम्भवतःउन्हें एकतत्त्ववादी मानते हैं। इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि रामानुजाचार्य ने कुछ समय तक यादवप्रकाश से शिक्षा ली थी। किन्तु कालान्तर में दोनों के दर्शन में मतभेद होने पर दोनों का सम्बन्ध अक्षुण्ण न रह सका[2] । यादवप्रकाश की वेदान्तसूत्र पर टीका आज अनुपलब्ध है। ऐसा अनुमान पी. एन. श्रीनिवासाचारी का भी है । अतः भेदाभेदवाद पर उनके स्वतन्त्र विचारों की पुष्टि भी नहीं हो पाती । तदपि श्रीनिवासाचारी ने ग्रन्थों में विद्यमान विचारों से यादवप्रकाश के दर्शन को स्वतन्त्र रूप देनर का प्रयास किया है।

श्रीनिवासाचारी[3] सम्भावना व्यक्त करते हैं कि वेदान्तसूत्र (१.४.२०) श्रीभाष्य पर सुदर्शनभट्ट की व्याख्या श्रुतप्रकाशिका[4] में आश्मरथ्य का जो दर्शन प्राप्त होता है वह दर्शन शायद यादवप्रकाश का हो । थिबूट ने भी वेदान्तसूत्र (१.४.२०) पर रचित भामती का अनुवाद कर यह कहा है कि आश्मरथ्य ने जिस दर्शन का प्रतिपादन किया है वह भेदाभेदवाद ही है । भास्कर की तरह यादवप्रकाश भी निर्गुण ब्रह्म की सत्ता नहीं मानते। इसी प्रकार श्रीनिवासाचारी ने भास्कर व यादवप्रकाश के ब्रह्मपरिणामवाद में अन्तर माना है। यादवप्रकाश[5] चित् व अचित् की सत्ता तो स्वीकार करते हैं किन्तु चित् व अचित् की गुणात्मक विशेषता में अन्तर नहीं मानते। इसके विपरीत भास्कर ने चित् च अचित् के गुणों में भेद स्वीकार किया है।

यादवप्रकाश[6] की तत्त्वमीमांसा में यथार्थता भिन्नाभिन्न रूप में व्यक्त हुई है। इनके दर्शन में एक ब्रह्म अनेक जीवों में व्याप्त होता है तथा बहुरूपता को प्राप्त होता है। यादव का दर्शन एक में अनेक व अनेक में एक को स्वीकार करता है। ब्रह्मत्व का स्वरूप सत् मात्र है। यादव के दर्शन को श्रीनिवासाचारी ने जान कैअर्ड[7] के शब्दों में व्यक्त किया है –

ईश्वरए सीमित आत्मा (जीव) तथा संसार भिन्न–भिन्न तत्त्व नहीं हैं अपितु एक अकेली पहेली के तत्त्व या भाग हैं ।

जैसे सागर लहरों, तरंगों, तथा फेन में तथा मिट्टी घट आदि में परिणत होती है तथैव ईश्वर भी चित् व अचित् में परिणत होता है। इसके अतिरिक्त स्वप्रकाशता सर्वशक्ति व आनन्द आदि गुणों को ईश्वर का बताया गया है। चित् व अचित् भी वास्तविक सत्ता (ब्रह्म) की ही विशेषताएं हैं जो अन्ततः (ज्ञानावस्था में) अपनी असीमता को प्रकाशित या प्रकट करते हैं। यादवप्रकाश का यह विचार भास्कर के अनुकूल प्रतीत होता है। ईश्वर की विशेषताओं के कारण ही ब्रह्मत्व ब्रह्माण्ड की कारण एकता के रूप में संगठित हुआ है। इससे ब्रह्मत्व का जगत् कारणत्व सिद्ध होता है। किन्तु यादवप्रकाश ब्रह्म को जगत् का कारण मानते हैं अथवा ब्रह्मत्व को, यह सं देह अभी बना हुआ है।[8]

लेकिन कृष्णमाचारी के कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि ब्रह्म (ईश्वर) ही चित् (विषयों का अनुभवकर्ता) और अचित् (अनुभव का विषय) रूप में दृष्टिगोचर होता है। यादवप्रकाश ब्रह्म को स्थिर और गतिमान दोनों रूपों में स्वीकार करते हैं। गतिमान स्तिथि में वह बहुरूपता को प्राप्त होता है। यही ब्रह्म की परिणाम शक्ति बताई गई है[9] । ब्रह्म को उत्पन्न करने वालों (मनुष्यादि) का भी उत्पत्तिकर्ता कहा गया है । ब्रह्म के अतिरिक्त यादवप्रकाश जीव की सत्ता भी मानते हैं। जीव को वे तीन रूपों[10] में विभक्त करते हैं –

१– बद्ध जीव , २– मुक्त जीव , ३–सिद्ध जीव.

जीवनमुक्ति के विषय में यादवप्रकाश का मत भास्कर के सदृश ही है। अर्थात् यादव भी जीवनमुक्ति को स्वीकार नहीं करते। मुक्ति सीमितता (जीव) का लोप (समाप्ति) नहीं अपितु पूर्णता की प्राप्ति है[11] ।

निष्कर्षतः यादवप्रकाश के दर्शन का लक्ष्य जीव को सिमितता से असीमितता का बोध कराना है तथा स्वयं की आत्मा से जीव को दूर कर आत्मत्व का साक्षात्कार करना है ।

निम्बार्क का स्वाभाविक भेदाभेदवाद[12] –

निम्बार्क वेदान्त दर्शन के महत्त्वपूर्ण आचार्य हैं । दासगुप्त[13] ने इनके समय को निश्चित अरना कठिन माना है। तदपि मध्वमुखमर्दन को उनका ग्रन्थ मानने के कारण वे निम्बार्क का समय चौहदवीं शताब्दी के उत्तर चतुर्थांश या पन्द्रहवीं के आरम्भ में रखने में प्रवृत्त होते हैं । निम्बार्क का भाष्यग्रन्थ ब्रह्मसूत्रों पर वेदान्तपारिजातसौरभ नाम से प्रसिद्ध है। निम्बार्क का दर्शन द्वैताद्वैत नाम से अभिधेय है। द्वैताद्वैत को ही निम्बार्क का स्वाभाविक भेदाभेदवाद कहते हैं। द्वैताद्वैत वह दर्शन है जो द्वैत (जगत्, जीव, नानारूप प्रपञ्च) तथा अद्वैत (यथार्थ सत्ता के रूप में मात्र एक सत् (ब्रह्म) की प्रधानता) दोनों की सत्ता को यथार्थ मानते हैं । विद्वानों[14] का मत है कि निम्बार्क के दर्शन पर भास्कर और यादवप्रकाश के भेदाभेदवाद का प्रभाव पडा है।

निम्बार्क के दर्शन पर महत्तवपूर्ण शोध कार्य रोमा बोस ने किया है। रोमा बोस[15] ने अपने ग्रन्थ निम्बार्क का दर्शन (Philosophy of nimbarka) में निम्बार्क के भाष्य का अनुवाद तथा निम्बार्क दर्शन की अन्य वेदान्तियों के दर्शन से समीक्षा कर महत्त्वपूर्ण कार्य प्रस्तुत किया है। कोकिलेश्वर शास्त्री[16] के अनुसार निम्बार्क का दर्शन औडुलोमि की परम्परा पर आधारित है। वी. एस. घाटे[17] ने भी अपने ग्रन्थ (Comparative study of Vedant) में निम्बार्क के भेदाभेदवाद[18] को अद्वैत व द्वैत के मध्य का दर्शन मानते हुए उसे ब्रह्मसूत्रों का वास्तविक अर्थ प्रस्तुत करने वाला बताया है।

निम्बार्क ने जगत् को तीन वास्तविक श्रेणियों में विभाजित किया है। ब्रह्म । चित् । अचित् । ब्रह्म सृष्टि नियन्ता है। चित् विषयों का अनुभवकर्ता है। चित् जीव ही है। अचित् अनुभवों का विषय है। अचित् को संसार के रूप में समझ सकते हैं। ये तीनों परस्पर भिन्न भी हैं तथा अभिन्न भी, ऐसा निम्बार्क का अभिप्राय है। मन्त्रवर्णात्– (ब्रह्मसूत्र २.३.४३) के भाष्य[19] में जीव को ब्रह्म का अंश माना गया है। इसी सूत्र के भाष्य में निम्बार्क गीता का पद्य ममैवांशो जीवलोके जीवभूतो सनातनः[20] प्रस्तुत कर जीव की ब्रह्मांशता को पुष्ट करते हैं। जीव का

ब्रह्मांश होने पर भी निम्बार्क ब्रह्म को सुखदुःखादि का भोक्ता नहीं मानते। ब्रह्म का अंश होने पर भी निम्बार्क[21] उसे पूर्णतया ब्रह्म नहीं मानते अपितु जीव के विषय में कर्तव्याकर्तव्य विषयों कि विधि व उनके निषेध हैं। इसका अर्थ यह हुआ की ब्रह्म ब्रह्म से अभिन्न भी है तथा भिन्न भी है। जैसे अग्नि के एक होने पर भी वह श्रोत्रियों के घर से गृहीत है, श्मशानादि से नहीं, इत्यादि। अंश व अंशी का जो सम्बन्ध होता है वही सम्बन्ध ब्रह्म का जीव व जगत के साथ माना गया है। निम्बार्क के विपरीत शंकर के दर्शन में अन्तर इतना ही है कि शंकर के दर्शन में जिस जीव का अनुभव होता है वह यथार्थ नहीं अपितु अज्ञान के कारण विवर्त रूप में माना जाता है।

इस प्रकार निम्बार्क के दर्शन में ब्रह्म स्थिर व गतिमान दोंनों रूपों में है। वह जगत का उपादान व निमित्त[22] दोनों कारण है। निम्बार्क ने ब्रह्म को राधा कृष्ण रूप में स्वीकार किया है। अपने अंश व चित् शक्ति[23] के द्वारा ही वह चित् व अचित् दोंनों रूपों में परिणत होता है। निम्बार्क के भेदाभेद को स्वाभाविक भेदाभेद इस रूप में कहा जाता है कि जैसे साँप की कैचुली उससे उत्पन्न होनें से उसका रूप व उत्पन्न होने के बाद भिन्न रूप में प्रतीत होती है[24] उसी प्रकार संसार भी ब्रह्म से उत्पन्न होता है तथा उसी पर निर्भर रहता है। यह सम्बन्ध भास्कर की तरह औपाधिक न होकर स्वाभाविक माना गया है। मुक्त होने पर जीव ब्रह्म के ब्रह्मभाव व सायुज्य को प्राप्त कर ब्रह्म से तादात्म्यता स्थापित करता है। रामानुज की तरह निम्बार्क भी जीव को तीन प्रकारों[25] में विभक्त करते हैं-

१ जो सर्वदा मुक्त हैं
२ वे जो पहले ही मुक्ति को प्राप्त हुए हैं
३ वे जो वर्तमान में भी मुक्त नहीं हुए हैं

इस प्रकार संक्षिप्त रूप में निम्बार्क के स्वाभाविक भेदाभेदवाद को प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुत शोधपत्र में भास्कर के औपाधिक भेदाभेदवाद, यादवप्रकाश के भेदाभेदवाद, नोम्बार्क के स्वाभाविकभेदाभेदवाद की समीक्षा की गयी है।

संदर्भ

1. *अभेदधर्मश्च भेदो यथा महोदधेरभेदः स एव तरङ्गाद्यात्मना वर्तमानो भेद इत्युच्चे न हि तरङ्गादयः पाषाणादिषु दृश्यन्ते तस्यैव ताः शक्तयः शक्तिशक्तिमतोश्चानन्यत्वमन्यत्वं चोक्तलक्ष्यते यथाग्नेर्दहनप्रकाशनादिशक्तयो भेदाः यथा च वायोः प्राणादिवृत्तिभेदेन भेदः। तस्मात् सर्वमेकानेकात्मकंनात्यन्तमभिन्नं भिन्नं वा। भास्करभाष्यम्, २.१.१८.*
2. *भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग–३, पृष्ठ,८२.*
3. *वही.*
4. The philosophy of bhedabheda, p,143.
5. *श्रीभाष्यम्, पृ.३७८.*
6. The philosophy of bhedabheda, p.145.
7. Same , page. 146.
8. Page. 147.
9. Page. 147.
10. Page.147.
11. Page. 150.
12. Page.150.
13. *भारतीय दर्शन का इतिहास,पृ. ३२३.*
14. *वही, पृ. ३१९.*
15. The philosophy of bhedabheda, p.155.
16. *वही, पृ.१५५.*
17. *वही,*
18. *वही,*
19. *वेदान्तदर्शन (श्री ब्रह्मसूत्र), भूमिका, पृ.१७.*
20. *पादोस्य विश्वा भूतानीति मन्त्र वर्णात् जीवो ब्रहमांशः पृ.सं. २०४, ब्रह्मसूत्र निम्बार्कभाष्यम्*
21. *ममैवांशो.... इति जिवाशः स्मर्यते। वहीं, पृ.सं २०५*
22. *यथा श्रोत्रीयागारादग्निराहृयते, श्मशानादेस्तुनैव। वहीं पृ.स. २०६*
23. The philosophy of bhedabheda page 158
24. *वहीं पृ.सं. १५९*
25. *वहीं पृ.सं. १६०*
26. *वहीं पृ.सं. १६३*